Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com
ISSN:2584-105X Pg. 168 - 171

भारतीय वास्तुशास्त्र का संक्षिप्त परिचय

डॉ. चन्द्र कान्त
सहायक आचार्य, ज्योतिष विभाग, महर्षि वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय, कैथल, हरियाणा-136027
drchanderkant2017@gmail.com

Accepted: 22/07/2025
Published: 27/07/2025

सारांश

यह शोध-पत्र भारतीय वास्तुशास्त्र की ऐतिहासिक, वैदिक एवं शास्त्रीय पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है। वैदिक वाङ्मय से प्रारम्भ होकर वास्तुशास्त्र ने भारत की स्थापत्य कला, भवन निर्माण, मंदिर-निर्माण एवं गृहविज्ञान के विविध पहलुओं को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इसमें पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के सिद्धान्तों के अनुरूप भवन निर्माण की प्रक्रिया को निर्देशित किया गया है। प्राचीन आचार्यों जैसे विश्वकर्मा, मय, भृगु, वसिष्ठ आदि द्वारा निर्मित ग्रन्थों में वास्तु के विविध अंगों जैसे भूमि चयन, द्वार विन्यास, दिशा-चक्र, मुहूर्त, जलाशय निर्माण आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। शोध में यह भी स्पष्ट किया गया है कि ज्योतिष शास्त्र और वास्तु शास्त्र के मध्य घनिष्ठ अंग-अंग संबंध है, जो संहिता स्कंध में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। साथ ही, प्राचीन मंदिर स्थापत्य की अद्भुत शैली, भारतीय संगीत की प्रस्तुति तथा वास्तु शास्त्र की सामाजिक-सांस्कृतिक उपयोगिता को भी रेखांकित किया गया है। आज के आर्किटेक्चर विज्ञान में भी वास्तु शास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तों का समावेश किया जा रहा है, जो तकनीकी युग में मनुष्य को वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय जीवन पद्धति के माध्यम से संतुलित एवं सुखी जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

मुख्य शब्द: *भारतीय वास्तुशास्त्र, वैदिक स्थापत्य, पञ्चमहाभूत, भवन निर्माण, दिशा-चक्र, वास्तु-दोष, वास्तुशान्ति, विश्वकर्मा, मयमतम्, ज्योतिष संहिता, मंदिर स्थापत्य, वैदिक परम्परा, शास्त्रीय वास्तु, वास्तु एवं ज्योतिष संबंध, प्राचीन विज्ञान*

मानवसभ्यता के विकास के साथ साथ वास्तु का विकास भी दृष्टिगोचर होता है। प्रारम्भिक काल में मानव प्रकृति के साथ मिल जुलकर पर्वतों गुफाओं आदि में रहकर जीवन व्यतीत करता था। फिर कालान्तर में प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपागमों से निवास योग्य गृह आदि का निर्माण कर उसमें अपना जीवन व्यतीत करने लगा। जितनी मानव सभ्यता प्राचीन है उतना ही वास्तु का भी इतिहास है। वास्तु का इतिहास वैदिक वाङ्मय के काल से माना जाता है। वैदिक वाघ्मय के वेदों में अनेक स्थानों पर वास्तु के मूलभूत तत्वों का विवेचन प्राप्त होता है। वास्तु शब्द का शाब्दिक अर्थ पर यदि विचार करें तो वास्तु अर्थात् वास योग्य। इसकी उत्पत्ति वस् निवासे इस धातु से तुण प्रत्यय करने पर वृद्धि एकादेश होकर यह वास्तु शब्द निष्पन्न हुआ है। वास्तु शब्द की निष्पत्ति के विषय में आचार्य अमर ने अमर कोष में कहा है[1] - **वेश्मभूर्वास्तुरत्रियाम् ।।** इसी प्रकार आंग्ल विद्वान मोनियर विलियम ने भी वास्तु शब्द के अर्थ के विषय में कहा है - **The site or foundation of a house site, ground, building or dwelling place[2].** अतः वास्तु शब्द का शाब्दिक अर्थ निवास करने के अर्थ में ग्रहण किया गया है।

वास्तु शास्त्र के विषय में चिन्तन वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होता है। वैदिक काल में यागादि कार्यों को सम्पादित करने के लिए उचित भूमि का चयन, वेदी निर्माण आदि अनेक कार्यों को सम्पादित करने के लिए वास्तुशास्त्र विषयक चर्चा वेदों में प्राप्त होती है। कल्पसूत्रों के अन्तर्गत शूल्बसूत्रों में वैदिक याग की यज्ञवेदि निर्माण के नियमों का उल्लेख मिलता है, जिससे वास्तु शास्त्र में वर्णित भूमिचयनादि विचार, भवन निर्माणादि विचारों का आधार स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार भवनादि के निर्माण के समय में वास्तु चक्र का विचार करते समय वास्तु पुरुष के शरीर में नक्षत्रों का न्यास किया जाता है। नक्षत्रों के न्यासक्रम में विश्वकर्मप्रकाश ग्रन्थ में कहा गया है[3] -

वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्च व्यासेन भाषितम् ।

यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुस्तदादौ त्रीणि मस्तके ।।

चतुष्कमग्रपादे स्यात् पुनश्चत्वारि पश्चिमे ।

पृष्ठे च त्रीणि ऋक्षाणि दक्ष कुक्षौ चतुष्ककम् ।।

पुच्छे चत्वारि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारि वामतः ।

मुखे भत्रयमेव स्युरष्टाविंशतितारकाः ।।

शिरस्ताराग्निदाहाय गृहो द्वासोऽग्रपादयोः ।

स्थैर्यं स्यात् पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः ।।

कुक्षौ स्याद् दक्षिणे लाभः पुच्छे च स्वामिनाशनम् ।

वामकुक्षौ च दारिद्रयं कमुखे पीडा निरन्तरम् ।।

वास्तु शास्त्र के स्थापत्य कला के विषय में ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में स्तम्भ युक्त गृह का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वास्तु शास्त्र के आचार्यों के विषय में आचार्य अगस्त्य का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः स्थापत्यादि कला का प्रादुर्भाव ऋग्वेद से पूर्व स्वीकार किया जा सकता है। असुरों के गुरु शुक्राचार्य ने अपनी शुक्रनिति में 32 विद्याओं में शिल्प विद्या की गणना की है। भारतीय वास्तु विद्या का आधार वेद को स्वीकार किया गया है। भारतीय ज्ञान विज्ञान के आधार का मूल धर्म माना जाता है। अतः इस कारण भारतीय विचारकों ने वास्तु ब्रह्मवाद को स्वीकार करके भारतीय वास्तु कला में जीवन का नवसंचार किया है।

वास्तु के प्रवर्तक आचार्यों के विषय में वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण में वास्तु शास्त्र के अठारह आचार्यों का उल्लेख मिलता है[4] -

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।

नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ।।

ब्रह्म कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च ।

वासुदेवोऽग्निरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ।।

अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रेपदेशकाः ।

संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरुपिणः ।।

अग्निपुराण में पच्चीस आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तु शास्त्र के आचार्यों के सदृश ज्योतिष शास्त्र के भी अठारह प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं, जो कि अधिकांश दोनो शास्त्रों के प्रवर्तक आचार्य हैं। अतः प्रवर्तकों से भी ज्योतिष एवं वास्तु शास्त्र दोनों का एक दूसरे के साथ अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। वास्तु का ज्योतिष शास्त्र के साथ अन्योऽन्य सम्बन्ध होने के कारण शाखा के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त है। ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में वास्तु शास्त्र का अन्तर्भाव होने के कारण अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। ज्योतिष शास्त्र के त्रिस्कन्धों में संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत वास्तु शास्त्र के विषयों का चिन्तन

[1] अमर कोश, द्वितीय काण्ड, पुरवर्ग, श्लोक सं. - 19

[2] M.Monier Williams, Sanskrit English Dictionary Page – 948

[3] विश्वकर्मप्रकाश, 3.12-16

[4] मत्स्य पुराण, अध्याय- 252, श्लोक सं. 2-4

एवं वर्णन प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण के अनुसार भृगु, अत्रि, वसिष्ठ आदि ऋषियों ने वास्तुशास्त्र की विस्तृत व्याख्या करके उच्च कीर्तिमान स्थापित किये हैं । इनमें विश्वकर्मा एवं मय वास्तुशास्त्र के सुविख्यात आचार्य रहे हैं। ये दोनों वास्तुशास्त्र के समकालीन प्रतिद्वन्द्वी माने जाते हैं । विश्वकर्मा एवं मय के अनुयायियों ने भवननिर्माण के अनेकों नियमों की व्याख्या वास्तुशास्त्र के मानक ग्रन्थों में की है। इन ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र के उद्देश्यों एवं आवश्यकता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है ।

वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों के विषय में दो प्रमाण प्रायः प्राप्त होते हैं - विश्वकर्म परम्परा एवं मय परम्परा। विश्वकर्म परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ वास्तुशास्त्रम्, अपराजितपृच्छा, विश्वकर्मसंहिता, वास्तु प्रकाश, वास्तु समुच्चय, समराङ्णसूत्रधार, प्रासादमण्डन, वास्तुरत्नावली इत्यादि तथा मय परम्परा में प्रमुख ग्रन्थ मयमतम्, मानसार, शुक्रनीति इत्यादि। इन वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों में निम्नलिखित विषयों को निरुपित किया जाता है, जो मनुष्य के जीवन के साथ साक्षात् सम्बन्धित होते हैं। वास्तु शास्त्र के निम्नलिखित विषय प्रमुख हैं-

- भूमि विचार
- काकिणी विचार
- दिग् विचार
- अहिबल चक्र विचार
- द्वार निर्णय
- मुहूर्त्त विचार
- वास्तु शान्ति विचार
- जलाशयादि विचार।

इस प्रकार अनेक विषयों के साथ वास्तु शास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन किया जाता है, जो मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षण के साथ सम्बन्धित होते हैं। यह चराचर जगत सृष्टि पञ्चभूतात्मक है, इसी प्रकार मानव का शरीर भी पञ्चतत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) का ही सम्मिश्रण रूप है। पृथ्वी पर किया जाने वाला कार्य विशेष पञ्चतत्त्वों पर ही निर्भर होता है। इसी प्रकार वास्तु शास्त्र का मूल आधार पञ्चमहाभूत माने जाते हैं। वास्तु शास्त्र के मुख्य विषय में पञ्चमहाभूतों के द्वारा मनुष्य अपने निवास स्थान में पञ्चमहाभूतों के आधार पर अपने जीवन को सुखपूर्वक यापन करने का प्रयास करता है। अतः पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश पञ्चमहाभूतों का आश्रय लेकर मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह करता है। मनुष्य को गृहादि निर्माण करने से पूर्व वास्तु सम्मत विचार करना अत्यावश्यक कहा गया है, जिससे वह अपने घर में सुखपूर्वक जीवन यापन कर सके। गृह के विषय में कहा भी गया है -

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं बिना ।

अर्थात् गृहस्थ जीवन की सभी क्रियाएं गृह के बिना सिद्ध नहीं होती हैं। गृह में किए जाने वाले कर्मों के विषय में कहा गया है -

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः ।

निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ।।[5]

अर्थात् दूसरे के घर में किए गये श्रौत-स्मार्तादि शुभ कर्मों का फल प्रायः निष्फल हो जाता है, क्योंकि इस प्रकार के कर्मों का फल प्रायः गृहपति को जाता है। अतः गृह, प्रासाद, भवन, मन्दिर आदि का निर्माण के विषय में ज्ञान प्रदान करने का प्राचीन भारतीय विज्ञान वास्तु शास्त्र है। जिसको वर्तमान समय के विज्ञान में आर्किटेक्चर का नाम दिया गया है।

वास्तु एवं दिशाएं

वास्तु शास्त्र में सर्वप्रथम दिक् साधन मूल है, यदि दिक् विचार न किया जाए तो वास्तु सम्मत भवनादि की कल्पना नहीं की जा सकती है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशाएं व्यवहार जगत में प्रसिद्ध होने पर वास्तु शास्त्र में चार अन्य विदिशाएं अर्थात् कोण तथा आकाश एवं पाताल को जोडकर कुल दस दिशाओं का विचार एवं उल्लेख शास्त्रें में दृष्टिगोचर होता है। मूल चतुर्दिशाओं के मध्य में कोण दिशाएं होती हैं। उत्तर एवं पूर्व के मध्य में ईशान कोण, पूर्व एवं दक्षिण के मध्य में आग्नेय कोण, दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य में नैऋत्य कोण तथा पश्चिम एवं उत्तर के मध्य में वायव्य कोण होते हैं। इन दिशाओं के स्वामियों में इन्द्र (पूर्व), अग्नि (आग्नेय कोण), यम (दक्षिण), राहु (नैऋत्य कोण), शनि (पश्चिम), केतु (वायव्य कोण), गुरु (उत्तर), शिव (ईशान कोण) का विचार दिक् विचार में किया जाता है। अतः वास्तु शास्त्र में सर्वप्रथम दिक् विचार करके उसके स्वामियों का विचार किया जाता है। एवं गृह, भवनादि में वास्तु दोष होने पर वास्तुशान्ति की जाती है। दिक् स्वामियों के विषय में पं- कल्याण वर्मा द्वारा विरचित सारावली ग्रन्थ में कहा गया है[6] -

भानुः शुक्रः क्षमापुत्रः सैहिकेयः शनिः शशिः ।

सौम्यस्त्रिदश मन्त्री च प्राच्यादिदिगधीश्वराः ।।

अद्भुत मन्दिर रचना का इतिहास

प्राचीन भारतीयों ने एक ओर जहां पिरामिडनुमा मन्दिर बनाए, तो दूसरी ओर स्तूपनूमा मन्दिर बनाकर विश्व को चमत्कृत किया। आज दुनियाभर के धर्म के प्रार्थना स्थल इसी शैली में बनते हैं। मिश्र के पिरामिडों के बाद हिन्दू मन्दिरों को देखना सबसे अद्भुत माना जाता था। प्राचीन

[5] बृहद्वास्तुमाला, श्लोक सं. 7

[6] सारावली, अध्याय – 4, श्लोक सं. 8

काल में मौर्य और गुप्त काल के मन्दिरों को नए सिरे से बनाया गया और मध्य काल में उनमें से अधिकांश मन्दिरों को विध्वंश किया गया। माना जाता है, कि किसी समय ताजमहल भी शिवमन्दिर ही था, कुतुबमीनार विष्णु स्तम्भ था। अयोध्या में महाभारत कालीन एक प्राचीन भव्य मन्दिर था जिसे तोड दिया गया। मौर्य, गुप्त एवं विजयनगर साम्राज्य के दौरान बने हिन्दू मन्दिरों की स्थापत्य कला को देखकर हर कोई दांतो तले अंगुली दबा लेता है। अर्थात् आचम्भित हो उठता है। अजन्ता एलोरा की गुफाएं हो या वहां का विष्णु मन्दिर, कोणार्क का सूर्य मन्दिर हो या जगन्नाथ मन्दिर, कम्बोडिया के अंकोरवाट का मन्दिर हो या थाईलैंड के मन्दिर इत्यादि अनेक मन्दिरों से पता चलता है, कि प्राचीन काल में खासकर महाभारतकाल में किस तरह के मन्दिर बने होगें। समुद्र में डूबी द्वारिका के अवशेषों की जांच से ज्ञात होता है, कि आज से लगभग 5000 वर्ष पहले भी मन्दिर एवं महल (प्रासाद) इतने भव्य एवं आकर्षित थे, जितने की मध्यकालीन युग में बनाए गये थे । भारत में संगीत की परम्परा अनादिकाल से ही रही है। खुजुराहो के मन्दिर हो या कोणार्क के मन्दिर, प्राचीन भारत के मन्दिरों की दिवारों पर गन्धर्वों की मूर्तियां आवेष्टित हैं। उन मूर्तियों में लगभग सभी वाद्ययन्त्रें को दर्शाया गया है, जिनका प्रयोग संगीत में किया जाता था। गन्धर्वों और किन्नरों को संगीत का अच्छा वेता माना जाता है। दुनियाभर के संगीत के ग्रन्थ सामवेद से प्रेरित हैं। वास्तु शास्त्र का मुख्य उद्देश्य सर्वविध सुखी एवं शान्त जीवन व्यतीत करने से है। जहां रहकर मनुष्य अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके। इस भौतिकवादी अत्याधुनिक तकनीकी युग में हम वास योग्य उत्तम घर का निर्माण तो कर लेते हैं, परन्तु उसमें रहते हुए भी सुखी एवं शान्त मन का अनुभव नहीं करते हैं। किसी भी स्थान पर निवास करने से पूर्व उस स्थान का वास्तु सम्मत विचार अति आवश्यक होता है। अतः वास्तु सम्मत भूमि विचार के उपरान्त घर का निर्माण करना चाहिए। वास्तु आदि दोष के निवारण के लिए वास्तु शान्ति करवानी चाहिए।

वर्तमान समय में वास्तु शास्त्र को तकनीकी विषय के अन्तर्गत आर्किटेक्चर के विषय में पढाया जा रहा है। आधुनिक यन्त्रें की सहायता से इस दुरुह्य शास्त्र के ज्ञान को सरल बना कर प्रायोगिक विधि से छात्रें को प्रदान किया जा रहा है। वर्तमान के आर्किटेक्चर विषय के अन्तर्गत हमारे प्राचीन वास्तु का अत्याधिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। आज प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित करके नूतन शोध सम्पादित किए जा रहे हैं, जिससे जनसामान्य समाज लाभान्वित हो रहा है। अतः वास्तु शास्त्र का ज्ञान समाज के जनसमुदाय को होना परम आवश्यक हो गया है, जिससे वे अपने निवास स्थान गृह में रहते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। यदि वास्तु सम्मत गृहादि का निर्माण न किया जाए तो मनुष्य अपने जीवन काल में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करता है। अतः गृहादि निर्माण करने से पूर्व वास्तु सम्मत विचार करना अत्यावश्यक होता है।

भारतीय वास्तुशास्त्र सम्पूर्ण भवन आदि निर्माण विधि एवं प्रक्रिया का प्रतिपादक शास्त्र है। इस शास्त्र की उत्पत्ति स्थापत्यवेद से हुई है, जो अथर्ववेद के उपवेद के रूप में प्रसिद्ध है। यह स्थापत्य विज्ञान है, जो प्रकृति के पाँच मूलभूत तत्त्वों (पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश) के साथ समायोजन करती है तथा उनका मनुष्य एवं पदार्थों के साथ सामञ्जस्य स्थापित करती है। यह वास्तु सम्मत भवनों में रहने वाले प्राणियों के स्वास्थ्य, धन-धान्य, प्रसन्नता एवं समृद्धि के लिए कार्य करती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा है, कि –

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।

यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[7]

अर्थात् ऋग्वेद की इस ऋचा में वैदिक-ऋषि वास्तोष्पति से अपने संरक्षण में रखने तथा समृद्धि से रहने का आशीर्वाद प्रदान करने हेतु प्रार्थना करता है। ऋषि अपने द्विपदों (मनुष्यों) तथा चतुष्पदों (पशुओं) के लिए भी वास्तोष्पति से कल्याणकारी आशीर्वाद की कामना करता है।

ज्योतिष शास्त्र के संहिता भाग में वास्तुविद्या का वर्णन दृष्टिगोचर होता है । ज्योतिष के विचारणीय पक्ष त्रिप्रश्न अर्थात् दिग्-देश-काल के कारण ही वास्तु ज्योतिष के संहिता भाग में समाहित हुआ है । वैदिक काल से ही ज्योतिष शास्त्र मानव जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार करता है । विगत कई वर्षों से हमारे आचार्य इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****

[7] ऋग्वेद - 7/54/1